राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हों शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हो पाएं तो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

वर्ष 67 | अप्रैल-जून 2019 | अंक 2

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक		पृष्ठ
1.	भजन	01
2.	दुनियाँ ईश्वर के खेल का रंगमंच है *लालाजी महाराज*	02
3.	आप अपनी किस्मत खुद बदल सकते हैं *डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज*	06
4.	उपदेश *अनमोल वचन*	11
5.	गुरु का दामन न छोड़ें *परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब*	15
8.	साधना के सन्दर्भ में ज़िक्र और फ़िक्र	20
9.	अलहुसेन नूरी बगदादी *प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र*	22
10.	राम को समझिए	27
11.	भगवान को भेंट	34
12.	अकेलापन v/s एकांत	36

राम ॐ संदेश

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी

सम्पादक

डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 67 अप्रैल–जून 2019 अंक–2

भजन

भजन आतुरी कीजिए, और बात में देर।।
और बात में देर, जगत में जीवन थोरा।

मानुष तन धन जात गौड़ धरि करो निहोरा।।
काँच महल के बीच पवन इक पंछी रहता।

दस दरवाजा खुला, उड़न को नित उठि चहता।।
भजि लीजे भगवान एही में भला अपना।

आवागौन छुटि जाय, जनम की मिटे कलपना।।
पलटू अटक न कीजिए, चौरासी धर फेर।

भजन आतुरी कीजिए, और बात में देर।।

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

दुनियाँ ईश्वर के खेल का रंगमंच है इसमें हमारी ज़ात और जमात का मुक़ाम

महात्मा रामचंद्र जी महाराज ने एक जगह लिखा है – ''हे परमपिता परमात्मा यह सेवक जैसा है तैसा आपकी शरण में मौजूद है। इसको ख़बर नहीं कि आपके गुण कैसे गाये जावें। कभी–कभी अपनी बाख़बरी पर नाज़ (सचेत दशा पर गर्व) हो जाता है लेकिन जब काम का वक्त आता है, तो यह सब धरे का धरे रह जाता है। अब तक छान–बीन करने का नतीज़ा यह निकला और यह जान पाया कि कुछ नहीं जाना।"

''दुनियाँ के हर हिस्से में इल्म (विद्या) का शोर मचा हुआ है। लाखों–करोड़ों किताबें लाइब्रेरिओं में भरी पड़ी हैं। हज़ारों अख़बार और रिसाले हर मुल्क के कोनों से रोज़ाना, हफ्तेवार और माहवारी निकल रहे हैं। हर ख़ास और आम की नज़रों में समाकर, जुबानों पर चढ़कर, ज़हंनो (मस्तिष्क) में उतर जाते हैं और कुछ रोज़ हाफिज़े (स्मरण) की कोठरीओं में बंद रहकर फिर न जाने कहाँ से कहाँ चले जाते हैं, कि याद करने पर भी याद नहीं आते और अगर याद आ भी जाएँ तो बे सिर–पैर के, किसी काम के नहीं। कहाँ से आते हैं और कहाँ ग़ायब हो जाते हैं ? क्या यह सब आपके नाम और रूप के नज़्ज़ारे तो नहीं हैं जो आपके ज्ञान के समुद्र से लहरों की शक्ल में उठते और फिर लुप्त हो जाते हैं ?"

''ज्ञान–अज्ञान, प्रकाश–अन्धकार, विद्या–अविद्या, जड़–चैतन्य, मौत–ज़िंदगी, ताक़त–कमज़ोरी वगैरा–वगैरा ये सबके सब आपकी माया के खेल तमाशे हैं। दुनियाँ एक तमाशे की जगह– रंगमंच है। सब लोग एक्टर यानि अभिनेता हैं और आपस में एक दूसरे का खेल देखने वाले हैं। कुछ लोग खेल खेल रहे हैं, तो कुछ उन खेलों को देख रहें हैं और कुछ इन खेले हुए खेलों की नक़ल उतारने में बदमस्त (संलग्न) हैं। बहुत सी

तादाद (संख्या) लोगों के इन नक़ली खेलों को देखकर ऐसी मस्त और महब (तल्लीन) है कि उनके आनंद का ठिकाना नहीं। यह चक्र ऐसा घूम रहा है कि न मालूम कब ख़त्म होगा? मुमकिन है कि महाप्रलय या क़यामते कुब्रा इस चक्र की आख़िरी हरक़त या ठहराव के दिन का नाम हो।

जो इस संसार से चले गए, सब मुक्त हस्तियाँ अपना-अपना खेल दिखा कर और थक-थका कर एक कोने में बैठीं हैं और ऐसे ख़ामोश और छुप कर बैठे हैं कि लौटकर ख़बर तक न ली, ऐसे गुमनाम हुए कि किसी का नामोनिशान तक बाकी नहीं। क्या हुआ अगर उँगलियों पर गिने-गिनाये महापुरुष, ऋषि-मुनि, पीर-पैग़म्बर, अवतार-औलिया, अपने-अपने कारनामों या हिदायतों (कृतियों-उपदेशों) के नाम और रूप में अब तक याद करने वालों को अपनी झलक दिखा देते हैं। उनका साया रुपी नाम और रूप जब तक कि ईश्वरीय प्रकाश बाकी है, क़ायम रहेगा। पर साया तो साया ही है। नक़ल की हैसियत और उम्र भला कितनी?

"ऐ परमात्मा! ये बन्दा भी ऐसी हस्तियों की कितनी नक़लों की नक़ल और असलियत के किसी मुक़ाम की असल का साया और परमात्मा की सिफ़ात का मजमुआ (गुणों का समूह) आपके मुक़र्रर किये हुए नियमों के अनुसार पार्ट अदा कर रहा है। आप सबके हृदय की जानने वाले हैं इसलिए आप पर ही छोड़ता हूँ कि आप ख़ुद ही फैसला कर लें कि सेवक का खेल कितना असली है और कितना नक़ली, और अगर नक़ली है तो हस्ती की किस असल की नक़ल। मुझको पक्का विश्वास है कि आपकी दया और कृपा की लहरों और मौंजो ने आपसे दूर पड़े हुए शरीर को चारों तरफ़ से इस दुनियाँ में पहले ही दिन से ढाँप रखा था और सबसे पहले हिदायत (आदेश) की रौशनी मुझपर मेरी परमभक्त माता की पवित्र गोद में डाली गयी, जिस प्रकाश की हरारत (गरमी) ने सात वर्ष तक पाला पोसा।"

"हे परमदयालु! आपके रहम (दया) ने मुझको बहुत दिनों तक बे हिदायत नहीं छोड़ा बल्कि उम्र के उन्नीसवें साल में एक मुबारिक दिन ऐसा हुआ कि तमाम हस्ती को हमेशा के लिए एक मुजस्सिम रहीम (मूर्तिमान दयालु) पंथ के दिखलाने वाले, ज्ञान और विज्ञान के दीपक के सुपुर्द कर

दिया। इस सच्चे रास्ते को दिखलाने वाले ने पहले ही दिन मेरे कान में फूंक दिया कि तेरी हस्ती पहले ही दिन से असलियत की तरफ़ मायल (झुकी हुई) है। इसलिए तू अपने आपको यानी असल को असल करके दिखला। नकल तो असल की कर और नक़ल की नक़ल इस तरह कर कि नक़ल या साये को औज़ार (हथियार) बना। स्वांग रचने में माया की मदद ले और सहारा ज़ाते मुतलक़ (सर्वेश्वर) का ले।"

''मेरे रहनुमा (पथ प्रदर्शक) ने ऐसा इशारा देकर मुझको सिर्फ़ मेरे ऊपर ही नहीं छोड़ दिया, बल्कि ख़ुद साये (छाया) की तरह हर वक्त साथ रहकर, सोलह बरस तक अपनी ख़ास तवज्जह– ज़ाहिरी और अन्दरूनी– से मेरी निगाहेदाश्त फ़रमाई (अर्थात प्रकट व अप्रत्यक्ष विशेष कृपा की चौकसी की)। पंथ के बाहरी आडम्बरों से अलहदा रहने के लिए हमेशा हिदायत फ़रमाई और आख़िरकार अपने रंग में रंग–रंगा कर यह हुक्म फ़रमाया कि हमारा मिशन जिस तरह और जहां तक हो सके दुनियाँ के लोगों तक पहुँचाया जाए।"

आपकी मंशा यह थी कि गिरे हुए जीवों और भूले भटके संसारियों को उभारा जाए और उनकी हालत को संभाला जाये। आपका फ़रमान यह था कि जब तक लोगों की अन्दरूनी (आन्तरिक) हालत न सम्भलेगी उनकी भीतरी शक्तियों का उभार होकर वे जाग न जाएंगी और मन की ताक़तें फिर से नशवोनुमा (विकसित) न होंगी और न फूले फलेंगी, बुद्धि तेज़ होकर शुद्ध न होगी और सच्चा ज्ञान प्राप्त न होगा, उस वक्त तक ख़ाली पूजा–पाठ और ऊपरी उपासना से काम न चलेगा और जीव जैसे इस हाल में बंधे हुए हैं वैसे ही फंसे रहेंगे।

इसलिए आपने हमेशा इस बात पर ज़ोर दिया कि जहाँ तक बन सके अन्दर का अभ्यास किया और कराया जाए और इसके साथ सब धर्म सम्बन्धी उसूलों (नियमों) की पाबंदी की जाए। यम–नियम, जायज़ और नाजायज़ तरीक़ों और अमलों, धर्म–अधर्म के व्यवहारों पर पूरा ख़्याल रखा जाये जिससे इख़लाक़ (चरित्र) सुधरे। स्वाध्याय से मौक़ा–ब–मौक़ा फ़ायदा उठाया जाये। अंतर का अभ्यास करने वालों का सत्संग किया जाये तभी ज़ाहिरी और अंदरूनी (आंतरिक) तरक़्क़ी मुमकिन है।

इसके खिलाफ़ (विपरीत) अगर दुनियाँ के उन पन्थाइयों की रीस (नक़ल) उतारी जायगी और अमल करेंगें जो महज़ तितली बनकर किताबें पढ़ लेते हैं या बुजुर्गों, महापुरुषों का हाल सुनकर अपने दिल का इत्मीनान हासिल कर लेते हैं और अंदरूनी (आंतरिक) अभ्यास कुछ नहीं करते, उनका अभ्यास सिर्फ़ थोड़ी देर किताबों का पाठ करना और भजन कीर्तन करके शब्दों को गाकर, अपनी तबियत को बहलाना है तो फिर जिसका काम असली मक़सद (ध्येय) तक पहुँचना है, कोसों दूर हो जायेगा।

आपके हुक्म और उसूलों की पाबन्दी का हमेशा ख्याल रखा गया और यही वजह है कि हमारे प्रेमियों की तादाद बहुत थोड़ी है। दुनियाँ के लोग चाटक–नाटक, ऊपरी खेल–तमाशों और माया की झलक के भूखे हैं। उनके लिए सिर्फ़ भीतरी अभ्यास एक भारी बोझ है। अपनी पुरानी आदतों को तब्दील करके धर्म सम्बन्धी इख़लाक़ पर आ जाना बहुत ही बोझिल काम हो गया है, भागने और मुंह छिपाने की कोशिश करते हैं। कितने ही भाग गए और न जाने कौन–कौन भागने को तैयार हैं।

हमारी थोड़ी सी तादाद (संख्या) जो अब तक क़ायम नज़र आती है किस क़दर शानदार और वज़नी है, इसका मुक़ाबला दूसरी जमात (संस्था) के सदस्यों से वो ही साहब कर सकते हैं जो अहले नज़र (परमार्थ दृष्टि संपन्न) और इस मार्ग के सन्तों की सौहबत उठाये हुए हैं। यही वजह है कि इतनी मुद्दत में भी यह जमात कोई नुमाया और नामवर जमात (प्रसिद्ध संस्था) नहीं बन सकी। न इसका कोई ज़ाहिरा वजूद (अस्तित्व) है, न कोई इमारत, न कोई तहरीरी उसूल (लिखित नियम) और न कोई फण्ड है।

यही वजह है कि इबददायी उसूल (प्रारम्भिक नियमों) और मंशा के ख़िलाफ़ जहाँ तक भी हो सका अमल दरामद करने की जुर्रत (चेष्टा) नहीं की गयी है और अपनी इस जमात यानी संगत को (बाद में पूज्य लालाजी महाराज द्वारा स्वयं संस्थापित रामाश्रम सत्संग को) हमेशा माया और मायावी झगड़ों से अलहदा रखा गया है।

प्रवचन गुरुदेवः डॉ. श्रीकृष्ण लालजी महाराज

आप अपनी किस्मत खुद बदल सकते हैं।

सन्त का हृदय आलोकित होता है। वह अपने आत्मिक प्रकाश को शिष्य के ऊपर डालता है जिससे शिष्य का चित्त भी आलोकित होने लगता है। सन्तों की संगति से सत्, चित्त और आनन्द प्राप्त होता है। जो लाभ हज़ार बरस की तपस्या से नहीं मिलता वह सन्त की थोड़ी सी संगति से प्राप्त हो जाता है। पहले पहल वह आनन्द Temporary (अस्थाई) होता है क्योंकि जिस वक्त इन्द्रियों के भोग का आनन्द मिलता है तो वह फिर दब जाता है। लेकिन फिर बार–बार संत की सोहबत में जाने से वह ठहरने लगता है। इसलिए सन्तमत में सत्संग और गुरु की सोहबत पर बहुत जोर दिया जाता है। यहाँ सत्संग से मतलब है कि सम विचार धारा के सत्संगी भाई बहनों के साथ जहाँ भी कहीं सत्संग होता हो उसमें शामिल होना और वहाँ जो Grace (ईश्वर की कृपा की धार) आ रही है उसको अपने अन्तःकरण में समाहित करना मुख्य है। दूसरा, गुरु का सत्संग (सोहबत) का मतलब यह है कि बार–बार गुरु के दर्शनों के लिए जाना, उनसे अपनी हालत अच्छी या बुरी, सांसारिक या आध्यात्मिक, नम्रता पूर्वक निवेदन कर देना और कोई अपनी इच्छा उनके सामने न रखना, उनके आधीन हो जाना।

गुरु वह है जिसने अपने आपको पूरी तरह ईश्वर में लयकर दिया है और अन्दर से उसी से लगन लगी है। बाहर से (स्थूल देह से) संसार के काम स्वतः होते रहते हैं। साधारण व्यक्तियों की स्थूल देह और आत्मा के बीच मन होता है। गुरु के या सन्त के दो ही चीज़ें होती हैं, आत्मा और स्थूल देह, उनका मन नहीं होता।

सच्चे गुरु की पहचान यह है कि उसकी सोहबत (संगति) में बैठकर मन शान्त हो जाये और आत्मिक आनन्द आने लगे। ऐसे ही लोग सन्त होते हैं। ईश्वर ने दुनियाँ तकलीफ के लिए नहीं पैदा की है। दुख तकलीफ इसलिए आते हैं कि यहाँ की चीज़ों को भोग कर उनसे बेज़ार हो जाये (ऊब

जायें) और सच्चे सुख की तलाश करें। अगर कोई शख़्स दुनियाँदार (निपट संसारी) है तो एक दिन वह भी दीनदार (परमार्थी) हो जायेगा। रुपया, मान बड़ाई, स्त्री सबका भोग किया तो जो आनन्द मिला वह दायमी (स्थायी) नहीं पाया। सच्ची शांति नहीं मिली। लेकिन जो बेवकूफ होगा वह उसी को सच्चा आनन्द समझेगा और जो अक्लमंद होगा वो उसमें न फँसकर अपने अन्दर आत्मा की तरफ घुसता जायेगा। दुनियाँ की चीज़ों का आनन्द छोड़कर उससे ऊँचे आनन्द यानी आत्मा के आनन्द और आखीर में आनन्द महज़ (आनन्द ही आनन्द) यानी ईश्वर को पा लेता है जो आनन्द का सागर है। आनन्द तुम्हारे अन्दर है, बाहर की चीज़ों में नहीं है।

जब आत्मा आवरणों में दबी रहती है तो तम अवस्था में होती है जिसमें अंधकार ही अंधकार है, आलस ही आलस है। यह पशुओं की सी अवस्था है। तमोगुणी वृत्ति के मनुष्य उदर–पोषण, मैथुन और निन्द्रा इन तीन बातों में ही अपनी ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। इनमें से जब किसी को जागृति हो जाती है तब वे 'रज' के स्थान पर आ जाते हैं, जिसमें द्वन्द की अवस्था होती है यानी कभी अच्छाई और कभी बुराई में व्यवहार करते हैं। कभी दैवी वृत्तियाँ होती हैं और कभी आसुरी। इन्हीं में लिप्त रहने को देवासुर संग्राम कहते हैं। जब मनुष्य इनसे liberate (स्वतंत्र) हो जाता है तब उसकी आत्मा ईश्वर रूप हो जाती है। यह हालत 'सालोक्य' की है यानी सारे गुण ईश्वर के ही होते हैं, फ़र्क सिर्फ यह होता है कि एक के (ईश्वर के) शक्ल नहीं है और दूसरे के शक्ल है।

ईश्वर का नियम है कि जब किसी का फ़ायदा करना होगा (उद्धार करना होगा) तब वह मनुष्य रूप धर कर आयेगा। हमजिन्स को हमजिन्स से ही फायदा होगा (यानी एक प्रकार के जीवधारी को दूसरे वैसे ही जीवधारी से फ़ायदा होगा – तुलसीदास जी के शब्दों में ''खग जाने खग ही की भाषा'') या तो हम इतने ऊँचे उठ जायें यानी हमारी आत्मा इतनी निर्मल हो जाये कि ईश्वर तक पहुँच जाये या वह इतना नीचा उतर आये कि हमारी तरह हो जाये, तब फायदा होगा। निर्गुण का ध्यान नहीं हो सकता। गुरु ही एक

ऐसी हस्ती है जो मनुष्य रूप में परमेश्वर है। हमारे आपकी तरह शरीर धारी है, उसी का ध्यान किया जा सकता है। वह सगुण रूप में परमेश्वर है। उसका ध्यान करने में आसानी होती है, उससे बातचीत करके समझा जा सकता है।

कोई ख़्वाहिश तेरे बजुज़ (सिवाय) बाक़ी न रहे (यानी तू ही तू रहे) तेरी मर्जी पूरी हो (तेरी इच्छा पूर्ण हो) हमें कुछ नहीं चाहिए– न आनन्द, न ज्ञान, न शांति।

सर बरहनः नेस्तम दारम कलाहे चार तर्क।
तर्के–दुनियां, तर्के उक़्बा, तर्के मौला, तर्के–तर्क।।

यानी पहले दुनियाँ को छोड़ो, फिर गुरु के ख़्याल को छोड़ो, फिर छोड़ने के ख़्याल को भी छोड़ दो। यह सन्तों का उसूल (सिद्धान्त) है।

जो शौक ज़िन्दगी में है वही मरने के बाद करोगे। डाक्टरी, रुपया पैदा करना, गुरु बनना, आध्यात्म का प्रचार करना आदि इच्छाओं के अर्न्तगत आता है। मरने के बाद कहाँ जाओगे, यह किसी फकीर से पूछने की ज़रूरत नहीं है। डाक्टर बनना चाहते हो उस तरह के वंश में और सन्त बनना चाहते हो तो सन्त के घर जन्म मिलेगा। एक शख़्स कमज़ोर पैदा होता है और उसके माता पिता भी कमजोर हैं तो अपनी तन्दुरुस्ती अपनी कोशिश से ठीक कर सकता है और आगे जाकर तंदुरुस्त हो जाता है। वह अपनी कोशिश से बना, यह दुनियाँ की बात है। दीनी (परमार्थी) बातों में इरादा पक्का और character (आचरण) का मज़बूत हो। मन को और बुराईयों को हटाकर एक ऐसे center (केन्द्र) पर ले आये जहाँ अच्छाई उसका स्वभाव बन जाये।

यह रास्ता कमजोरों के लिए नहीं है। सरदार जी इन्कमटैक्स में पहले पी.ए. थे। अपनी हिम्मत और मेहनत से पढ़ाई की, इन्कमटैक्स इन्सपैक्टर बने, और अपनी हिम्मत और मज़बूत इरादे से नौकरी छोड़कर बिजनैस लाइन (व्यवसाय) में आ गये। इस तरह अपनी सांसारिक उन्नति की। इसी तरह हर शख़्स अपनी किस्मत पलट सकता है।

हमारे पिछले कर्म एक तरफ को ले जा रहे हैं और हमारी कोशिश दूसरे रास्ते पर जाने की है। जब दोनों टक्कर खायेंगे तो क्या रास्ता नहीं बन जायेगा ?

ज़िन्दगी (अमर जीवन) आपके अन्दर है, ज्ञान आपके अन्दर है, शक्ति आपके अन्दर है लेकिन इनके ऊपर पर्दा पड़ गया है। इन्द्रियों के भोग, मन की वासनाओं और बुद्धि की चतुराई ने यह पर्दा डाल रखा है। इसे उतार कर फेंक दो। आत्मा का असली रूप खुल जायेगा। यही आत्मा का साक्षात्कार है और यही आज़ादी (मोक्ष) है।

चार तरह के खतरे होते हैं–

(1) ***ईश्वरीय–*** जैसे बुद्ध भगवान को हुआ था। इस संसार में मनुष्य जन्म लेकर क्या करने आया था और क्या करने लगा। यह ख़तरा (caution) हमेशा चेताता है, बार–बार आता रहता है और भव सागर से निकालकर ही छोड़ता है।

(2) ***ख़ैरात (दान–पुण्य)–*** मनुष्य के अन्दर जो आत्मा है वह उसे भलाई और नेक काम (शुभ कर्म) के लिए प्रेरित करती रहती है। यदि प्रेरणा मिलते ही तुरन्त उसे कार्यान्वित कर दिया जाये तो खैरात या दान–पुण्य सत्य की तरफ ले जाता है, जिससे आत्मा के साक्षात्कार में मदद मिलती है। अगर इस तरह की चेतावनी मिलने पर आदमी सोच विचार करने लग जाये तो फिर कुछ काम नहीं बन पाता।

(3) ***तीसरा ख़तरा मन का है–*** मन दुनियाँ में फँसाता है और तरह–तरह की इच्छायें उठाता रहता है। एक इच्छा की पूर्ति होती है तो उसके साथ बहुत सी और इच्छायें पैदा हो जाती है। मिसाल के तौर पर मकान बन रहा है तो उसमें ऐसा हो, वैसा हो, यानी शेखचिल्लयों की सी बातें सोचकर उन्हें व्यवहारिक रूप देना चाहता है। भगवान से प्रार्थना करता है कि अच्छे किराये पर चढ़ जाये और जब किरायेदार तंग करता है तब परेशान होता है कि न तो किराया ही देता है और न खाली ही करता है, किस आफत में फँस गये। यह खतरा एक ही तरह का होता है।

(4) ***चौथा ख़तरा माया (शैतान) का है–*** जब सन्ध्या में बैठते हैं तो दुनियाँ भर के ख़्याल जाने कहाँ से आ जाते हैं और पूजा में मन नहीं लगने

देते। अपने इष्ट का ख़्याल जाता रहता है और दुनियाँ तथा उसके सामान आदि के विचार ही उठते रहते हैं।

पहले दो ख़तरे अच्छे होते हैं और ईश्वर की तरफ ले जाते हैं। बाकी दोनों ख़तरे मनुष्य को गिराने वाले होते हैं और ईश्वर से दूर कर देते हैं। उनसे सावधान रहना चाहिए।

मानव जीवन सफल बनाओ

आदि शंकराचार्य अनूठी प्रतिभा संपन्न आध्यात्मिक विभूति थे। उन्होंने उपनिष्दों का भाष्य किया और अनेक प्रेरणादायक पुस्तकों की रचना की। देश भर में भ्रमण कर वह अपने उपदेशों से लोगों को मानव जीवन सफल बनाने की प्रेरणा दिया करते थे। हिमालय यात्रा के दौरान एक निराश गृहस्थ ने उनसे पूछा, 'सांसारिक दुखों के कारण मैं आत्महत्या कर लेना चाहता हूँ।' श्री शंकराचार्य ने कहा, 'यह मानव जीवन असीम पुण्यों के कारण मिलता है। निराश होने के बजाय केवल अपनी दृष्टि बदल दो, दुख व निराशा से मुक्ति मिल जायेगी।'

उन्होंने आगे बताया, 'कामनाएं अशांति का मुख्य कारण हैं। कामनाओं को छोड़ते ही अधिकांश समस्याएं स्वत: हल हो जायेंगी। धर्मानुसार संयमित व सात्विक जीवन बिताने वाला कभी दुखी नहीं हो सकता।' साधनपंचकम् में उन्होंने लिखा भी है, 'शांत्यादि परिचीयताम्– यानी सहनशीलता और शांति ऐसे गुण हैं, जो अनेक दुखों से दूर रहते हैं। इसके साथ ही गर्व व अहंकार का सदा परित्याग करना चाहिए। धन से कई बातों का भले ही समाधान होता है, किन्तु उससे शांति की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।'

उन्होंने यह भी कहा है कि काल किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। इसलिए वृद्धावस्था में जीने की आशा रखना, भगवत भजन में मन न लगाना, सांसारिक प्रपंचों में फंसे रहना मूढ़ता के ही परिचायक हैं। ज्ञानी और विवेकी वह है, जो भगवान की भक्ति में लगा रहता है।

परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन

उपदेश

- सन्तों का सिद्धान्त है– ''ईश्वर है और अवश्य है, सृष्टि के नियम अटल हैं, वह सर्व–समर्थ, सर्वशक्तिमान, सम्पूर्ण ज्ञान और सत्–चित्–आनन्द है। वह जो कुछ करता है हमारी भलाई के लिए करता है, हमारी शुरुआत (आदि) और आखीर (अन्त) उसी में है, वह सबके अन्तर में बैठा हुआ सबका सच्चा बाप है।'' जीव जब तक संसारी वासनाओं में फँसा हुआ है, ऊपर नहीं उठ सकता। जीवों के उद्धार के लिए सन्तजन यहाँ पधारते हैं और प्रेम के माध्यम से जीवों को समझाते हैं। जो उन पर विश्वास ले आते हैं तथा उनके बतायें हुए मार्ग पर चलते हैं वे अवश्य भवसागर पार कर जाते हैं।

❖❖❖❖❖

- घर के कामों में कम से कम दखल दीजिए। जितना कम दखल दोगे उतना ही आराम में रहोगे। आदमी के सुधारे कुछ नहीं सुधरता। यह काम ईश्वर के हाथ में है।

❖❖❖❖❖

- सबसे आसान तरीका उस (परमात्मा) तक पहुँचने का यह है कि बजाय इसके कि यह ख़्याल करो कि वह दूर है, यकीन (विश्वास) करो कि वह तुम्हारे नज़दीक से भी नजदीक है, उसका ध्यान करो ? हर समय उसकी याद रखो। सोचो, वह तुम्हारा हमेशा का साथी है और उसी के पास जाकर तुम्हें सच्चा आनन्द मिलेगा। दुनियाँ की यह सब चीजें उसी ने तुम्हें दी है और थोड़े दिनों के लिए हैं। उन थोड़े दिनों रहने वाली चीजों के लिए अपने असली प्रीतम को मत भूलो। जो चीजें उसने दी हैं उन्हें अपनी मत समझो। जब तक वे चीजें मौजूद हैं और उसने दे रखी हैं, उनकी सेवा में लगे रहो और जब वह वापिस माँगे, उसे ख़ुशी

से वापिस कर दो। इस तरह अपने मन को अन्तर में उससे लगाये चलो। अपनी वृत्तियों को बाहर से हटाकर उसी में लगा दो। हर समय उसका ध्यान करो।

❖❖❖❖❖

- भक्तों की शान निराली होती है। वे तैयार बैठे रहते हैं और अपने प्रीतम (परमात्मा) के लिए किसी वक्त भी कुर्बान हो जाते हैं। यही मरने से पहले मरना है। जब सारी इच्छायें खत्म हो जाती हैं तभी इस हालत को पहुँचता है। मीराबाई कहती थीं– ''सूली ऊपर सेज पिया की, केहि विधि मिलना होय''। सारी इच्छाओं को मार देना ही सूली चढ़ना है। जो सूली चढ़ जाता है वही पिया को पाता है। यह त्रिकुटी का स्थान है जो दोनों भौहों के बीच माथे में एक इन्च पीछे हैं। यहीं पर आत्मा का ठहराव है। इसी को 'शिवनेत्र' कहते हैं। यही शिवजी का धनुष है जो रामचन्द्र जी ने तोड़ा था और सीता जी को ब्याहा था। सीता 'शक्ति' का रूप हैं। हज़रत मुहम्मद सफेद घोड़े पर चढ़कर चाँद पर गये, वह यही 'त्रिकुटी' या 'शिवनेत्र' का स्थान है। इसकी शक्ल अर्धचन्द्राकार होती है। धनुष भी अर्धचन्द्राकार होता है। इस मुकाम (चक्र) को पार किये बिना प्रीतम को कोई नहीं पा सकता। ईसा की सलीब यही मुकाम है। वे नमूना पेश करते हैं भक्ति का कि प्रीतम पर किस तरह फ़िदा हुआ जाता है। जो जीते जी मर जाता है वही असली ज़िन्दगी पाता है। बगैर इच्छायें समाप्त किये Kingdom of Heaven (स्वर्ग का राज्य– सन्तों का सत्लोक) नहीं मिलता। अपने सांसारिक जीवन को ऐसे बदलो कि खुशी की जिन्दगी बन जाय और जब एक बार वह खुशी मिल गई तो हर हालत में खुशी ही खुशी होगी।

❖❖❖❖❖

- सच्चे गुरु के मिलने पर उनका बाहरी और आन्तरिक सत्संग करने और उनसे प्रेम करने पर त्याग खुद–ब खुद हो जाता है। त्याग पर अलहदा

जोर देने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने प्रेम को ही मुख्य माना है। यह बिल्कुल ठीक है, पर तर्जुबा यह बतलाता है कि ऐसे अभ्यासी का, जो पूर्ण रूप से अपने गुरु के कहने में हो और उसी का आशिक होकर तन–मन–धन सब अर्पण कर दे, मिलना बहुत मुश्किल है। हजारों अभ्यासियों में से कोई एक–दो निकलते हैं, और अगर ऐसा कोई पूर्ण गुरु है जो ईश्वर रूप है और ऐसा शिष्य जिसने सब तन–मन–धन हमेशा के लिए अपने गुरु पर कुर्बान कर दिया है तो उसको दुनियाँ की वस्तुओं से खुद ही त्याग हो जायेगा और उसका यह प्रेम उसे भवसागर से पार कर देगा। इसलिए हमारे यहाँ के सत्संगी भाइयों को चाहिए कि प्रेम के साथ–साथ सत्संग और भजन में अपने मन को देखते चलें और जिन–जिन चीजों में मन फँसा हुआ है और असली लक्ष्य यानी ईश्वर से दूर ले जाता है, उन चीजों का त्याग करना चाहिए। यही सच्चा प्रेम है। अगर प्रेम के साथ–साथ मन की वासनाओं का भी त्याग करते रहेंगे तो रास्ता जल्दी कटेगा।

❖❖❖❖❖

- जिनकी वृत्ति बाहर की ओर है वे उसे अर्न्तमुखी बनायें। सत्गुरु से उसकी युक्ति जानकर आन्तरिक ध्यान करने का अभ्यास करें। ईश्वर सभी जगह मौजूद है। इधर–उधर भटक कर समय नष्ट न करें। उसे अपने अन्तःकरण में देखें और इस काम में ऐसे महापुरुष का सहारा लें जिसने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है। तभी फायदा होगा। बिना गुरु के फायदा नहीं होगा। गुरु की मदद से हम अपनी सुरत (attention) को अन्तःकरण पर केन्द्रित कर सकेंगे। जलता हुआ दीपक ही बुझे हुए दीपक को जला सकता है। इसलिए सन्तों ने बार–बार कहा है कि बिना आत्मदर्शी (गुरु) का सहारा लिए साधारण जिज्ञासु अपने अन्तःकरण के पर्दों को साफ नहीं कर सकता।

❖❖❖❖❖

- सन्तमत प्रेम का मत है। इसमें प्रेम और विश्वास की ज़रूरत है और न बुद्धि के तर्क की। जो गुरु बतावें उस पर अमल करना प्रेम और विश्वास है लेकिन समझकर अमल न करे तो यह समझना नहीं हुआ। समझना बुद्धि का काम है और जो बुद्धि से समझकर चलता है वही 'मजहब' है।

❖❖❖❖❖

- लड़का कितना भी नालायक हो परन्तु बाप के लिए लड़का ही है। बाप हर समय अपने बेटे की प्रतीक्षा करता रहता है और चाहता है कि गोद में चिपटा ले। और हम हैं कि उसकी याद तक नहीं करते। परमात्मा के पास सारी चीजें हैं– यह सृष्टि उसकी लीला विलास है। उसके पास सिर्फ 'दीनता' नहीं है। तुम दीन बनकर उसके पास जाओ। वह तुम्हें अवश्य अपनी गोद में ले लेगा। दीन बनने के लिए अपने आप को मेटना पड़ेगा– यह जीवन का सौदा है। इसके लिए जीवन भर संघर्ष करना पड़े तो हिचको मत। मौके को गनीमत जानकर मानव–जीवन को सफल करो, वर्ना यह समय फिर हाथ नहीं आयेगा।

❖❖❖❖❖

- दुःख और मुसीबतें परमात्मा की नियामतें हैं इनके होते परमात्मा की याद खूब आती है।

❖❖❖❖❖

पृथ्वी पर कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसको ''समस्या'' न हो, और पृथ्वी पर कोई समस्या ऐसी नहीं है, जिसका कोई ''समाधान'' न हो। समस्या के बारे में सोचने से, बहाने मिलते हैं। समाधान के बारे में सोचने पर रास्ते मिलते हैं।

ज़िन्दगी को ''आसान'' नहीं, बस खुद को ''मजबूत'' बनाना पड़ता है। उत्तम समय कभी नहीं आता, समय को उत्तम बनाना पड़ता है।

प्रवचन परमसंत डॉ. करतार सिंहजी साहब

गुरु का दामन न छोड़ें

एक बार गुरु गोविन्दसिंह जी दक्षिण में गोदावरी नदी के तट पर बैठे हुए एक पत्थर हाथ में लिए हुए बार–बार ऊपर फेंक रहे थे, तथा पुनः हाथ में पकड़ लेते थे। यह काम कुछ देर तक करते रहे। एक क्षण ऐसा आया कि वह पत्थर हाथ में नहीं आया तथा नदी में गिर गया। गुरु महाराज ने सन्मुख बैठे शिष्यों से पूछा कि इस पत्थर की गति क्या होगी ? सबने यही कहा कि पत्थर हाथ से गिर गया और पानी में नीचे चला गया, कहीं बैठ गया। एक सज्जन जो उनके मुराद थे उनसे पूछा ''आप बताइये।'' वह दीन होकर कहने लगे ''आपके होते हुए मैं कुछ कहूँ, यह गुस्ताखी होगी।'' उन्होंने दूसरी बार कहा। सेवक ने वही उत्तर दीनता से दिया। पुनः गुरु महाराज ने कहा कि यह हमारा आदेश है आप अपनी प्रतिक्रिया अवश्य करें। उन्होंने बड़ी विनम्रता से कहा ''पत्थर जब तक आपके पवित्र हाथ में था वह शोभनीय था, शोभा पा रहा था। जैसे ही वह आपके (अपने इष्टदेव के) हाथ से जुदा हुआ वह भवसागर में गिरा। पता नहीं वह कहाँ–कहाँ चला जायेगा।''

यह तो पत्थर है उसकी गति ऐसी ही होनी थी। मनुष्य भी गुरु का दामन छोड़ दें, ईश्वर से या गुरु से अपना सम्बन्ध तोड़ ले तो उसका भी परिणाम भी यही होता है। हमारे दुःख का कारण क्या है ? सम्पन्न लोग भी हैं, ग़रीब भी हैं सब यही कहते हैं कि मन काबू में नहीं रहता। साधन एक ही है। हम जिस परमात्मा की सन्तान है, हमारे मन ने हमें उससे जुदा कर दिया है। उस परमपिता परमात्मा के चरण कमलों को पकड़ लेना है। जितनी देर हमारा सम्बन्ध दृढ़ रहेगा तब तक हमारा जीवन सुखमय, आनन्दमय होगा। यानी जब तक प्रभु की, अपने प्यारे की याद रहती है तब तक जीवन का आनन्द रहता है यानी चेतना को आत्मा की अनुभूति होती

है। उस आत्मिक सम्बन्ध को तोड़ने से मृत्यु होती है। मृत्यु का मतलब है कि हम दुख में फँस जाते हैं। दुख क्या है, यह जन्म–मरण का दुख है। ये संसार के दुख–सुख तो कुछ भी नहीं हैं परन्तु जन्म–मरण का जो दुख है, वही महान दुख है। इससे ही व्यक्ति छूटना चाहता है, व्याकुल है इसके लिए। बहुत दुख पाता है। साधन एक ही है– गुरु का दामन न छोड़ा जाए। पर क्या करें ? पहले तो हम ईश्वर की तरफ बढ़ते ही नहीं और यदि रास्ते पर चलने भी लगें तो मन इतनी बाधायें डालता है, भीतर तथा बाहर कि मनुष्य को ये बाधायें व्याकुल कर देती हैं। पागल बना देती हैं। असमंजस में भीतर का चैन खो जाता है, मानसिक सन्तुलन रहता ही नहीं।

प्रत्येक मनुष्य दुखी है। समय–समय पर महापुरुष आये है, और आते रहेंगे, सबने ही करुणावश मनुष्य जाति का उद्धार करने का प्रयास किया है। परन्तु मनुष्य ने अपने संस्कारोंवश महापुरुषों की चेतावनी को सुना नहीं। अभी आप भजन सुन रहे थे कि समय व्यर्थ जा रहा है, पता नहीं किस वक्त प्राण पखेरू उड़ जायें। हम जानते हैं कि मृत्यु अवश्य है और इस शरीर की मृत्यु से पहले यदि हमने अपने संस्कारों को खत्म नहीं कर लिया, अपनी वृत्तियों को, अपनी कामनाओं को, जहाँ–जहाँ मन फँसा है वहाँ से इसको आजाद नहीं करा लिया तब तक दूसरा जन्म अवश्य होगा और यह दुख की कहानी चलती रहेगी। हम कभी भी गम्भीरता से सोचते नहीं हैं कि हमारे दुख का कारण है क्या ? यह हमारा मन ही तो है। इसका स्वभाव कुत्ते की दुम की तरह है जो दस साल तक नलकी में डाल कर रखो, तब भी टेढ़ी की टेढ़ी ही रहती है।

सभी महापुरुष सत्संग पर विशेष महत्व देते हैं। ऐसे व्यक्ति के साथ बैठने से जो ईश्वर के साथ तदरूप हो, जो रास्ता चल चुका हो, उसकी सेवा में बैठो, सत्य का संग करो। एक परमात्मा ही सच्चा है या उसके भक्त जो उसके चरणों तक पहुँच चुके हैं या पहुँचने वाले हैं। उनके भीतर से प्रेम की विशेष तरंगें, किरणें, रश्मियाँ निकलती हैं, उनके पास श्रद्धा से, विश्वास से

बैठना ही काफी होता है। पहाड़ पर जायें तो शीतलता अप्रयास ही मिलती है। ऐसे ही महापुरुषों के पास बैठने से मन की बुराईयाँ धीरे–धीरे अपने आप छूटती चली जाती हैं और एक ऐसा क्षण आता है कि मन निर्मल होकर स्थिर हो जाता है। स्थिर होने के पश्चात् ही वह आत्मा के समीप पहुँचता है। तत्पश्चात् आत्मा में लय होकर परमात्मा में विलय हो जाता है। हमारे यहाँ यही याधन है परन्तु लोग इस तरफ ध्यान नहीं देते हैं। ईश्वर कृपा से ऐसा कोई महापुरुष मिल जाये जो ईश्वर से तदरूप हो रहा है तो उसकी शरणागत हो जाओ। बुरे हैं, भले हैं, तेरे हैं। उसके चरणों में बैठे रहो, मन में उसका स्वागत करते रहो। कुछ और करने की जरूरत नहीं है, सब पाप पुण्य कट जायेंगे। किसी प्रकार के कोई संस्कार हैं, अवगुण हैं सब खत्म हो जायेंगे। (परन्तु उस व्यक्ति से स्नेह होना चाहिए और वह व्यक्ति आपसे सहानुभूति करता हो।) माँ–बाप बच्चों से, यदि वे बुरा काम करें तो क्या कभी बदले की भावना रखते हैं ? ऐसा महापुरुष, सत्पुरुष किसी से बदले की भावना नहीं रखता। प्रभु किसी से ऐसी भावना नहीं रखते। यदि मनुष्य दुखी होता है तो वह अपने मन के कारण होता है। ईश्वर कभी किसी को दुख नहीं देता। सत्पुरुष किसी को दुख देना नहीं चाहते।

इसी को 'नाम' भी कहते हैं। नाम केवल राम–राम कहना नहीं है। 'नाम' सब साधनाओं को सार है। 'नाम' प्राप्त हो जाना, ईश्वर से तदरूप हो जाना, उसकी सारी शक्ति हमारे भीतर में बस जाना या सत्पुरुष के संग बैठकर उसके साथ तद्रूप हो जाना ये सब 'नाम' का अन्तिम चरण है। अन्तिम न भी हो तो व्यक्ति काफी प्रगति कर जाता है। परन्तु पहले पहल मन में इतनी श्रद्धा, इतना विश्वास होता नहीं। एक उतावलापन होता है, वह तुरन्त परिणाम चाहता है। जिनके शुभ संस्कार हैं या संस्कार बनने वाले हैं या काँटा बदलने वाला है जैसे अजामिल का बदला तो कृपा हो जाती है। परन्तु हम सब के लिए, जब तक यह सम्भव नहीं है, उनके लिए यही आवश्यक है कि प्रभु के साथ पथ–प्रदर्शक के माध्यम से सम्पर्क बनाना चाहिए। इसके लिए किसी ऐसे महापुरुष से सम्पर्क करना पड़ेगा

जो परमात्मा से तद्रूप हो। गुरु महाराज जी (महात्मा श्रीकृष्णलाल जी महाराज) ने अपने ही जीवन में अपने ही ऊपर उतारकर लिखा है कि 'हम जानते हैं कि हम क्या थे और हमारे गुरुदेव ने हमारे ऊपर कितनी कृपा की है'। एक नहीं ऐसे अनेकों उदाहरण हैं। ये सब 'नाम' में ही आ जाता है। 'नाम' केवल एक अक्षर नहीं है। यह एक प्रेम का सम्बन्ध है, आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध है। गुरुदेव फ़रमाया करते कि थे कि लोग समझते नहीं है, गुरु वास्तव में कोशिश करता है कि वह जिज्ञासु शिष्य के हृदय में समा जाये। वह शिष्य की पूजा करता है। वह सच्चे जिज्ञासु के लिए व्याकुल होता है। सच्चे जिज्ञासु के लाभ हित के लिए अपना सर्वस्य निछावर करता है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी अपने शिष्य नरेन्द्र (बाद में विवेकानन्द) के लिए व्याकुल रहते थे, उन्हें आवाजें लगाते थे। वे पीछे–पीछे जाते थे और नरेन्द्र आगे–आगे दौड़ते थे। उन्हें अच्छा नहीं लगता था, वे कहते थे कि 'बाबा, तुम्हें क्या हो गया है ? तुम मेरे पीछे–पीछे क्यों आते हो ?' सच्चा गुरु अपनी तरफ से प्रयास करता है, वह जतलाता नहीं, प्रदर्शन नहीं करता। यह सब सेवा है जो वह मौन में करता है। पता भी नहीं लगता है।

जब तक कोई सच्चा सत्पुरुष नहीं मिलता तब तक धर्म का आश्रय लेकर ही ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना एक साधन है जिसके द्वारा हम ईश्वर से तदरूप होने के लिए अपने को पेश करते हैं। हमारा जीवन दिखावटी है। इससे हम सबको ऊपर उठना चाहिए। सच्चा सम्बन्ध अपने इष्टदेव के साथ, प्रभु के साथ करना चाहिए। यही सबसे सरल साधन है।

विवेकानन्द जी के मन में बहुत समय तक अपने गुरु के प्रति विश्वास पैदा नहीं हुआ। वे अपने गुरुदेव की बहुत परीक्षा लिया करते थे। गुरुदेव को कोई बुरा नहीं लगता था, वे बहुत आनन्द लेते थे परीक्षा देने में। वे चाहते थे कि विवेकानन्द का उद्धार हो जाए। उन्हें अपने साथ लाए थे। उनके जो साधारण संस्कार शेष थे उनसे वे उन्हें मुक्त कराना चाहते थे, निर्मल कराना चाहते थे। अपने जैसा बनाना चाहते थे। उन्होंने लोक लज्जा की परवाह नहीं की। इसी तरह और भी उदाहरण हैं इतिहास में। बुल्लेशाह

जी से पूछा गया कि ईश्वर की प्राप्ति कैसे की जाए ? बुल्लेशाह ने कहा ''ये तो साधारण सी बात है।'' जैसे एक पौधे को एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगा देते हैं, वह दूसरी जगह उग जाता है।'' उनका भाव यह था कि मन को माया से हटाकर गुरु के चरणों में लगा दो। बस इतना ही करना होता है। अपने गुरु के प्रति उनका बहुत स्नेह था। एक बार उनके गुरु बुल्लेशाह से नाराज हो गए। बुल्लेशाह को यह बात बर्दाश्त नहीं हुई। गुरु की काफ़ी खुशामद की परन्तु गुरुदेव नहीं माने। शिष्य को मालूम था कि गुरु महाराज जी को संगीत से प्रेम है। स्त्री रूप होकर, पर्दा करके उन्होंने गाना गाया। बड़ा इश्क से पूर्ण गाना था। बुल्लेशाह पंजाबी के बहुत ही उच्च श्रेणी के कवि थे। पंजाब में मुसलमान, हिन्दु, सिख आदि सभी उनका आदर करते थे। जब उन्होने गाना गाया तो ऐसा वातावरण बन गया है कि सब मौन–मस्त होकर आत्मा देश में कूच कर गये। गुरु महाराज ने पूछा ''यह गाना किसने गाया है ?'' सब चुप हो गये। गुरु जी कहने लगे ''ये और कोई नहीं हो सकता, ये मेरा बुल्ला ही होगा।'' उठ कर उन्हें गले लगाया तथा उन्हें सब कुछ दे दिया।

बस हमें यही करना है कि गुरु का दामन न छोड़ें। जब तक वह नहीं मिलता है ईश्वर से प्रार्थना करते रहना चाहिए। वे तो सर्वज्ञ हैं, भीतर भी हैं बाहर भी हैं। या तो वे स्वयं कृपा कर देंगे या आपके पास किसी महापुरुष को भेज देंगे।

गुरु महाराज सबका कल्याण करें।

किसी क्षण केवल जीकर देखो। केवल जीओ–जीवन से लड़ो मत, छीना–झपटी न करो। चुप होकर देखो, क्या होता है। जो होता है, उसे होने दो। अपनी तरफ से सब तनाव छोड़ दो और जीवन को बहने दो। जीवन को घटित होने दो और जो घटित होगा–मैं विश्वास दिलाता हूँ– वह मुक्त कर देता है।

साधना के सन्दर्भ में ज़िक्र और फ़िक्र

(जाप एवं ध्यान)

ज़िक्र और फ़िक्र दोनों शब्द उर्दू भाषा में अरबी भाषा से आये हैं। ज़िक्र का अर्थ जाप और फ़िक्र का अर्थ विचार अथवा ध्यान से है।

हमारे श्रीमान लाला जी महाराज (ब्रह्मलीन परमसन्त श्री रामचन्द्र जी महाराज) की ही परम्परा के एक बड़े संत हुए हैं, आपने एक बार अपने एक वरिष्ठ शिष्य से प्रश्न किया, ''बेटे, यह बतलाओ कि दिल बड़ा है या दिमाग़ ?''

ये शिष्य प्रशासनिक सेवा के एक बड़े अधिकारी थे और उस समय कार्यरत थे। आपने थोड़ा विचार करके उत्तर दिया, ''हुजूर, मेरी समझ में तो दिमाग़ बड़ा है।'' सम्भवतः सभी इस प्रश्न का यही उत्तर देते।

पुनः प्रश्न हुआ– ''दिमाग़ ख़राब हो जाय तो क्या होता है ?''

उत्तर – ''हुजूर, आदमी पागल हो जाता है।"

प्रश्न – ''और दिल ख़राब हो जाय तो क्या होता है ?"

उत्तर – ''हुजूर, आदमी मर जाता है।"

प्रश्न – ''तो बेटे, कौन बड़ा हुआ ?"

उत्तर – ''हुजूर, इससे तो यही लगता है कि दिल बड़ा है।

आपने फ़रमाया ''बेटे, दिल बादशाह है और दिमाग़ उसका वज़ीर है।

हमारे पाठकों को अवश्य ही यह उत्सुकता होगी कि यह प्रश्नकर्ता कौन महापुरुष थे ? प्रश्नकर्ता तो परमसन्त सद्गुरु हाज़ी मौलाना नवाब अब्दुल ग़नी खां साहिब, भोगांव निवासी थे जो श्रीमान लालाजी महाराज के चाचा–गुरु थे तथा उनके शिष्य श्री कैलाश नाथ भटनागर – पी.सी.एस. के वरिष्ठ अधिकारी थे जो सन् १९७२ से रिटायर्ड हुए और लखनऊ में निवास करते थे। यह घटना उन्हीं की बतलायी हुई है।

हमें देखना चाहिए कि हमारे गुरु भगवान श्रीमान लाला जी महाराज इस विषय में क्या आदेश देते हैं। आपके एक लेख का अंश है –

१) फ़िक्र (विचार अथवा ध्यान) करने वाले का साथी नफ़्स (मन) है और ज़िक्र (जाप) करने वाले का साथी मालिके कुल (सबका स्वामी) है।

२) फ़िक्र में इधर–उधर भटकाव हो सकता है और हो जाता है क्योंकि इसमें दख़ल मन, बुद्धि, अहँकार का है जबकि ज़िक्र (जाप या शब्द) में डोरे जैसा लगाव सिर्फ परमात्मा का ही है क्योंकि वह धुर पद से सम्बन्ध रखता है। और इससे धोखा मुश्किल से होता है।

३) विचार शक्ति तो बुद्धि तत्व से आयी है और शब्द धुर भण्डार से।

४) फ़िक्र से ज़िक्र को ज़्यादा वक़्त और तरतीब (श्रेष्ठता और वरिष्ठता) है क्योंकि जाप और शब्द मालिके–कुल का गुण है जबकि फ़िक्र ऐसा नहीं है.

५) ज़िक्र, फ़िक्र के ताबेह (निर्भर) नहीं है पर फ़िक्र ज़िक्र के ताबेह है।

हृदय (दिल अथवा सूफ़ी भाषा में 'क़ल्ब') की वरिष्ठता उपरोक्त दोनों ही परमसंतों के शब्दों से इतनी स्पष्ट है कि किसी को भी इस पर सन्देह करने का कारण नहीं बनता। अतः हम सभी को हृदय के जाप को इस प्रकार अपनाना चाहिए कि २४ घंटों में एक क्षण भी इस जाप से ख़ाली न रहें। अभ्यास तथा गुरु–कृपा से यह सम्भव और सरल हो जाता है।

ध्यान, समाधि आदि के पीछे पड़े रहना साधकों के लिये सही दिशा नहीं है। वह स्थिति तो जाप के परिवक्व होने पर स्वतः ही आ जायेगी तथा फिर उसमें किसी प्रकार के भ्रम, भटकाव का भी भय नहीं रहेगा।

गुरुदेव हम सबका कल्याण करें।

(डॉ. हरनारायण सक्सेना, जयपुर)
राम सन्देश : अक्टूबर १९९३

प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

अलहुसेन नूरी बगदादी

तपस्वी अलहुसेन नूरी प्रभु प्रेम में मस्त, तेजस्वी, तत्वज्ञानी थे। उन्होंने बहुत ही कठोर तप, व्रत और साधनायें की थीं। लोग उन्हें 'कमरए सूफिया' (पवित्रात्माओं का चाँद) कहा करते थे। ये जैसे पवित्र चरित्र के थे, वैसे ही परम ज्ञानी भी थे। महात्मा सर्रीशति से उन्होंने धर्म की दीक्षा ली थी। महात्मा जुन्नेद से उनका गहरा सम्बन्ध था। उनकी धर्म–प्रणाली महात्मा जुन्नेद की धर्म–प्रणाली से मिलती–जुलती थी। तपस्वी अहमद यारी की संगति का भी उन्होंने लाभ उठाया था।

वे 'नूरी' क्यों कहलाए ? कहा जाता है कि जब वे रात के समय उपदेश करते थे तो उनके चेहरे के चारों ओर नूर–ज्योति का एक गोल चक्र सा दिखाई देता और उसके प्रकाश से झोपड़ी चमक उठती। एक दूसरा कहना यह भी है कि अलहुसेन की धर्म चर्चा में आध्यात्मिक गूढ़ तत्व प्रकट होते थे। इसलिए उन्हें 'नूरी' का खताब दिया गया।

अबू अहमद गाज़ी ने कहा है कि नूरी के समान कठोर तपस्या करते हुए उन्होंने किसी को नहीं देखा। महर्षि जुन्नेद का तप भी उनके तप के आगे फीका सा मालूम देता था।

शुरुआत में वे दुकान जाने का नाम लेकर घर से बाहर निकल पड़ते और बाजार में से रोटी खरीदकर गरीबों को बाँट देते। फिर मसजिद में जाकर नमाज पढ़ते और तब दुकान जाते। उनके घर वाले समझते थे कि हुसेन दुकान पर नाश्ता करते हैं। इस प्रकार बीस वर्ष बीत गये, वे कहाँ और क्या खाते हैं ये कोई नहीं जान पाया।

नूरी ने स्वयं कहा है– मैंने बहुत वर्षों तक तपस्या की, लोगों की संगति से परे मैं बहुत वर्षों तक एकांत में रहा। मैंने कई तरह की साधनायें की, तो भी मेरा धर्म–मार्ग साफ नहीं हुआ। इसलिए मैंने संकल्प किया कि

मेरा शरीर भले ही गिर जाए पर कार्य सिद्धि ज़रूर करूँगा। मैंने अपने शरीर को सम्बोधित करके कहा– 'ऐ शरीर! तूने बहुत वर्षों तक मनमाना खाना–पीना और देखना सुनना किया है, ईश्वर को हरएक तरह से भोग किया है। उन सबका दण्ड देने के लिए मैं मुझे कुएं में लटकाना चाहता हूँ। अब तू ईश्वर की इन बेशकीमती चीजों का अपने मनमर्जी के मुआफिक उपभोग नहीं कर पायेगा। अब तुझे ईश्वर की मर्जी के मुआफिक करना होगा। तभी तू सुखी हो सकेगा।'

''इस प्रकार मैंने चालीस वर्ष तक साधना की। फिर भी जिन्दगी में कोई खास फायदा नहीं दिखाई दिया। मैंने विचार कर देखा इसमें किसका कुसूर था ? हज़रत पैगम्बर साहब और दूसरे औलिया जो कुछ कह गये हैं वह तो झूठा होना सम्भव नहीं। फिर मुझे प्रभु का साक्षात्कार क्यों नहीं हुआ ? ज़रूर इसमें मेरा ही कसूर था।''

''इस तरह सोचकर मैंने अपने कसूरों की खोज की तो मालूम किया कि जब मैं सांसारिक कामों में लगता हूँ तो उसी में तल्लीन हो जाता हूँ और उपासना के समय किये हुए विचारों को भूल जाता हूँ। ऐसा होने से मेरा आचरण पवित्र नहीं रहता और वैसा हल्का जीवन धर्म साधना को आगे नहीं बढ़ने देता। धीरे–धीरे धार्मिक जीवन बढ़ाकर मैंने उस पशु जीवन पर विजय पाई।''

अलहुसेन नूरी ईश्वर की महिमा गाते–गाते अपने साथियों के साथ नाचते–कूदते और प्रभु प्रेम में मस्त हो जाते, जिससे जन साधारण उनके विरोधी और निन्दक बन गये।

गुलाम खलील नाम के एक आदमी ने खलीफा के पास जाकर अर्ज किया– ''हमारे गाँव में एक ऐसी टोली है जिसके लोग धर्म के नाम पर लोगों को भ्रम में डालते हैं और एकांत में बातें करते हैं। वह काफिरों की टोली है। आप सरीखे धर्म के प्रेमी अगर उनका वध करेंगे तो प्रभु बहुत खुश होगा।''

यह सुनकर खलीफा ने नूरी और उनके आदमियों को पकड़ बुलाया। उनकी मण्डली में महात्मा अबु हमजा, रकाम, शबली, जुन्नेद आदि धर्म प्रेमी भी थे। खलीफा ने बिना पूछताछ किये सबके सिर काट डालने का हुक्म दे दिया। जल्लाद ने सबसे पहले अपना हाथ रकाम पर उठाया। यह देखकर हुसेन नूरी दौड़कर हँसते–हँसते उनकी जगह जा खड़े हुए। खलीफा के आदमी यह देखकर अचरज करने लगे और बोले– ''अरे मूर्ख! तलवार कोई खाने की मिठाई नहीं है, गर्दन पर पड़ते ही यह उसे धड़ से जुदा कर देगी। अभी तेरी बारी नहीं आई, बारी आने पर अपनी गर्दन झुकाना।''

नूरी बोले– ''दूसरों के लिए अपना स्वार्थ छोड़ना मेरा धर्म है। जिन्दगी से प्यारी चीज़ इस दुनियाँ में और क्या है ? तो भी मेरी मंशा है कि अपनी जिन्दगी की ये बची–खुची थोड़ी सी घड़ियाँ अपने धर्म–बन्धुओं के काम में लगा दूँ। मैं अपना गला पहले कटवाऊँगा तो मेरे बन्धुओं की जिन्दगी के कुछ पल बढ़ ही जायेंगे।''

नूरी का प्रेम से भरा हुआ ऐसा अलौलिक उदार–भाव देखकर खलीफा चकित हो गया। वह बोला– ''जल्लाद! ठहर काजी की राय लेने के बाद इन्हें दण्ड दूँगा।''

काजी की राय ली गई। उसने सुन रखा था कि जुन्नेद बड़े पण्डित हैं, नूरी भी बड़े भक्त हैं। काजी ने उन सबसे धर्म–शास्त्र की बहुत सी बातें पूछीं। पहले सवाल के जवाब में शबली ने बड़ी सुन्दर बात कही, दूसरे सवाल का नूरी से तत्काल जवाब पाकर तो काजी खूब शर्मिन्दा हुआ। नूरी ने यह भी कहा– ''काजी आप ये बाहरी बातें क्यों पूछ रहे हैं ? ज्ञान की तो कोई बात पूछते ही नहीं ? आप जान लें कि ये सब ईश्वर–प्रेमी हैं, ईश्वर ही में इनका निवास है, उसी में उनकी गति है, स्थिति और जिन्दगी है। ईश्वर ही के द्वारा वे बोलते और चुप रहते हैं। यदि वे एक पल के लिए भी ईश्वर से अलग किये जायेंगे तो जीते नहीं रह सकेंगे। उनका बैठना, उठना, सोना सभी ईश्वर के साथ है। आपने जो प्रश्न पूछे हैं वे पुस्तक के अभ्यास के हैं, अनुभव से तो उनका कोई ताल्लुक ही नहीं।

नूरी की यह बात सुनकर काजी ने खलीफा से कहा– ''हुजूर! यदि इन लोगों को धर्मद्रोही और खराब रास्ते पर चलने वाला माना जायेगा तो मैं कहता हूँ, ईश्वर को मानने वाला एक भी आदमी इस दुनियाँ में नहीं है।''

खलीफा ने उन सबको बन्धन मुक्त करके उन सबका आदर सम्मान किया और कहा– ''आपको कुछ कहना है तो खुशी से कहें। वे बोले– ''हमारा तो इतना ही कहना है कि आप हमें भूल जायें। हम सब स्तुति व निन्दा से परे रहना ही पसन्द करते हैं।'' उनके वचन सुनकर खलीफा अपने किए पर पछताने लगा और बहुत इज्ज़त के साथ उन सबको विदा किया।

एक दिन महर्षि जुन्नेद नूरी के पास आए। उन्हें देखते ही नूरी आर्तनाद करके धरती पर गिर पड़े और बोले – ''महात्मन्! मेरे अन्तर में घोर संग्राम छिड़ा हुआ है और मैं बहुत ही कमजोर हो गया हूँ। जब मेरे हृदय में उस प्रभु का प्रकाश फैलता सा मालूम देता है तो मैं अपने आपको भूल जाता हूँ और जब मैं अपने आपको याद करता हूँ– मेरा देहाभिमान जागता है तो प्रभु की वह रोशनी गायब हो जाती है। तीस वर्ष से लड़ाई छिड़ी हुई है। जब–जब मैं आर्तनाद करता हूँ तो वह कहता है– ''चाहे तू रह या मैं रहूँ।'' उनकी बाते सुनकर जुन्नेद ने अपने शिष्यों से कहा कि– ''बन्धुओं! प्रभु की परीक्षा में पार उतरे और प्रभु ही में लवलीन हुए इस प्रेमी महात्मा के दर्शन करो।'' नूरी से उन्होंने कहा– ''नूरी! प्रभु में तल्लीन होकर उसी में मिलकर एक हो जाओ।'

एक बार एक अंधा 'हे प्रभो' बोल रहा था। नूरी ने उसके पास जाकर पूछा– ''क्या तू ईश्वर को जानता है ? अगर जानता है तो फिर जी कैसे रहा है ?'' इतना कहते–कहते वे भावावेश में बेहोश हो गये। होश में आने पर वे जंगल की ओर दौड़ पड़े। बास के जंगल में पहुँचकर वे इतने नीचे कूदे कि पाँवों में घाव पड़ गये तो भी प्रभु प्रेम की मस्ती के कारण अलहसेन नूरी को उन घावों का ज्ञान ही नहीं रहा। कहा जाता है कि उनके पैरों में

से गिरी हुई रक्त की बूदों से अपने आप धरती पर 'अल्लाह' लिख जाता था। अबूनसर सर्री ने कहा है कि बांस के जंगल से वे बेहोशी की हालत में ही घर लाये गये। लोगों ने उनसे 'ला इलाहा इल्लिहा' कहने का आग्रह किया तो वे बोले– 'मैं तो उसी के पास जा रहा हूँ।' इतना कह कर उन्होंने देह त्याग कर दिया। महर्षि जुन्नेद ने कहा है कि नूरी के समान सत्यवक्ता कोई हुआ ही नहीं।

उपदेश वचन

- जो मन की मलीनता से रहित दुनियाँ के जंजाल से मुक्त और लौकिक तृष्णा से विमुख है, वही सच्चा सूफी है।

❖❖❖❖❖

- सूफी ईश्वरपरायणता की ऊँची अवस्था में अपार सुख शांति भोगते हैं। वे संसार से दूर भागे हुए होते हैं। वे न किसी चीज के मालिक और न किसी चीज के गुलाम ही होते हैं।

❖❖❖❖❖

- जो दुनियाँ की किसी चीज पर अपना बन्धन नहीं रखते और न खुद किसी बन्धन में बंधते हैं, वे ही सूफी हैं।

❖❖❖❖❖

- सच्चे सूफी का धर्म बाहरी आचार और पण्डिताई दिखाने में नहीं है। उनका धर्म है पवित्र चरित्र होकर ईश्वर का अनुसरण करना, जो बाहरी दिखावे और ज्ञान की बातें रट लेने ही से नहीं मिलता।

❖❖❖❖❖

- मुक्त रहना, वीर बनना और बाहरी सुख वैभव से अलग रहना, ईश्वर को पाने के लिए पशु–वृत्तियों की गुलामी छोड़ देना सच्चे सूफी का स्वभाव है। इस उत्तम स्वभाव से दुनियाँ की दोस्ती को छोड़कर ईश्वर से स्नेह जोड़ने की उसमें ताकत आती है।

❖❖❖❖❖

राम को समझिए

'राम' अत्यन्त विलक्षण शब्द है। साधकों के द्वारा 'बीज मन्त्र' के रूप में 'राम' का प्रयोग अनादि काल से हो रहा है और न जाने कितने साधक इस मन्त्र के सहारे परमपद प्राप्त कर चुके हैं। आज 'राम' कहते ही दशरथ–पुत्र धनुर्धारी राम का चित्र उभरता है परन्तु 'राम' शब्द तो पहले से ही था, तभी तो गुरु वशिष्ठ ने दशरथ के प्रथम पुत्र को यह सर्वश्रेष्ठ नाम प्रदान किया। धार्मिक परम्परा में 'राम' और 'ओऽम' प्रतीकात्मक है और 'राम' सार्थक। राम शब्द में आखिर ऐसा क्या है ? इस प्रश्न का यही उत्तर हो सकता है कि 'राम' में क्या नहीं है ?

थोड़ा सा विचार करिए। 'राम' तीन अक्षरों से मिलकर बना है। 'र'+'अ'+'म' 'राम' के इन तीन घटक अक्षरों को छः प्रकार से व्यवस्थित किया जा सकता है।

'र' + 'अ' + 'म' = राम

'र' + 'म' + 'अ' = रमा

'म' + 'अ' + 'र' = मार (कामदेव)

'म' + 'र' + 'अ' = मरा

'अ' + 'म' + 'र' = अमर

'अ' + 'र' + 'म' = अरम

उपरोक्त प्रकार देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इन तीन अक्षरों में सृष्टि की उत्पत्ति सृजन प्रसार और विलय सब समाया हुआ है। और इतना ही नहीं यह भी प्रकट हो जाता है कि प्रत्यक्षतः विरोधाभासी दिखने वाले सब एक ही हैं। मायावश ही उनके विरोध का आभास होता है।

विस्तार से देखें– जो 'राम' पुरुष हैं वहीं 'रमा' अर्थात् स्त्री प्रकृति है। 'राम' पुरुष रूप में सारे विश्व–ब्रह्माण्ड सृष्टि का कारण है, आक्रामक बल है। वही 'रमा' स्त्री–प्रकृति के रूप में संग्राहक है सृजन की निर्माणकर्ता

है। राम पुरुष बल प्रधान है, 'रमा' संवेदना प्रधान। 'राम' बुद्धि प्रधान है, विश्लेषणात्मक है। रमा भावना प्रधान है, संश्लेषणात्मक है।

बुद्धि मार्ग निर्देश करती है, भावना ('चित्त') स्थायित्व प्रदान करती है। सृजन के ये दो आधार हैं। लेकिन जब तक 'राम' और 'रमा' अलग–अलग रहें सृजन असम्भव है। दोनों नदी के दो पाट हैं। इनको संयुक्त करता है 'म'+'अ'+'र' = मार या काम। भगवान् बुद्ध द्वारा 'मार विजय' की बड़ी प्रशस्ति है, ऋषियों द्वारा काम विजय हमेशा एक आदर्श रहा, 'नारद मोह' का पूरा आख्यान अत्यन्त सारगर्भित है। किन्तु 'मार' है, तभी उसके परे जाकर परमपद या 'एकत्व' प्राप्त किया जा सकता है अन्यथा राम और रमा, मार द्वारा संयुक्त होकर सृष्टि को फैलाते ही जाएँगे। पुरुष और प्रकृति अलग–अलग नहीं हैं और न उनके परस्पर सम्बन्ध की ही कोई स्वतन्त्र सत्ता है। जो 'राम' है वही 'रमा' है और वही 'मार' है।

नारायण! अब दूसरा युग्म लें। जो 'अमर' है वही 'मरा' है। अर्थात् तात्विक दृष्टि से देखें तो अमरत्व और मरणधर्मिता, शाश्वता और क्षणभंगुरता अलग–अलग नहीं हैं। जो क्षणभंगुर दिखाई देता है, जो सतत परिवर्तनशील दिखाई देता है, वही अमर है, शाश्वत है। मृत्यु और परिवर्तन तो आभास मात्र है, बुद्धि के द्वारा उत्पन्न भ्रम है। मृत्यु होती ही नहीं ।

मृत्यु से बड़ा कोई झूठ नहीं। फिर भी अज्ञान की अवस्था में मृत्यु से बड़ा कोई 'सत्य' नहीं। अज्ञान की दशा में जो मृत्यु है वही ज्ञान की स्थिति में अमरत्व है। जब तक मृत्यु वास्तविकता लग रही है तब तो 'मरा' ही है वह जीवित ही कहाँ? जीवन के प्रवाह के ये दो पक्षों के मूल सत्य, मृत्यु और अमरत्व, 'अमर' और 'मरा' 'राम' में ही निहित हैं। और साथ ही यह यथार्थ भी कि दोनों एक साथ सदैव उपस्थित हैं। प्रत्येक वस्तु का चरम यथार्थ शाश्वत, नित्य, अपरिवर्तनशील, अमर, अनादि और अनन्त है जब कि उसका आभासी स्वरूप या विवर्त क्षणभंगुर, अनित्य, सतत परिवर्तनशील, मरणधर्मा और समित है।

नारायण! अब छठा शब्द बनता है 'अ' + 'र' + 'म' = अरम अर्थात् जिसमें रमा न जा सके। बड़ी विचित्र बात लगती है कि जिसे विद्वान्, गुणी जन कहते है कि सब में 'रमा' है व 'अरम' कैसे हो गया ? विद्वान् और 'सिद्ध' में यही भेद है। विद्वान् 'उसे' देखता है और समझने की चेष्टा करता है। सिद्ध उसे अनुभव करता है और उसके साथ एकाकार हो जाता है। बाबा तुलसीदासजी ने गाया है– ''जानत तुमहिं, तुमहिं होय जाई''।

अह ह ह! बूँद सागर में गिरी तो स्वयं सागर हो गई। जब बून्द बची ही नहीं तो रमेगा कौन ? वह परासत्ता, वह चरम वास्तविकता, वह परब्रह्म तो 'अरम' ही हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि जो कुछ भी जानने योग्य है, जो कुछ भी मनन योग्य है, वह सब 'राम' शब्द में अन्तर्निहित है। योगियों और सिद्ध गुरुजनों ने संकेत दिया है कि 'ज्ञान' बाहर से नहीं लिया या दिया जा सकता। यह तो अन्दर से प्रस्फुटित होता है। आत्मा 'सर्वज्ञ' है साधना के प्रभाव से किसी भी शब्द में निहित सारे अर्थ स्वयं प्रकट हो जाते हैं। रामचरितमानसकार कहते है – ''सोइ जाने जेहि देहु जनाई''।

इस विराट् अर्थवत्ता के कारण ही 'राम : नाम' महामन्त्र है और उसके अनवरत जप से कालान्तर में उसमें निहित सार, अर्थ और सृष्टि के सारे रहस्य स्वतः प्रकट होकर साधक को जीवनमुक्त का परमपद प्रदान करते हैं।

मौन साधना का एक महत्वपूर्ण सूत्र

किसी को बदलने में अपनी ऊर्जा बरबाद मत करो। अपनी सारी ऊर्जा का उपयोग स्वयं को रूपांतरित करने के लिए करो। तुम्हारा रूपान्तरण बहुत सारे लोगों की मदद करेगा, तुम्हारे तर्क किसी की मदद नहीं कर सकते। इसलिए जितना हो सके मौन रहो, मस्त रहो, स्वस्थ रहो।

प्रेरक प्रसंग

गुरु की आज्ञा

एक शिष्य था समर्थ गुरु रामदास जी का जो भिक्षा लेने के लिए गांव में गया और घर–घर भिक्षा की मांग करने लगा।

''समर्थ गुरु की जय ! भिक्षाम् देहि...
समर्थ गुरु की जय ! भिक्षाम् देहि....''

भीतर से जोर से दरवाजा खुला और एक बड़ी–बड़ी दाढ़ी वाला तान्त्रिक बाहर निकला और चिल्लाते हुए बोला– ''मेरे दरवाजे पर आकर किसी और का गुणगान करता है। कौन है ये समर्थ ?''

शिष्य ने गर्व से कहा– ''मेरे गुरु समर्थ रामदास जी... जो सर्व समर्थ है।''

तांत्रिक ने सुना तो क्रोध में आकर बोला कि ''इतना दुःसाहस की मेरे दरवाजे पर आकर किसी और का गुणगान करता है तो देखता हूँ कितना सामर्थ्य है तेरे गुरु में ?''

वह बोला– ''मेरा श्राप है कि तू कल का उगता सूरज नही देख पाएगा अर्थात् तेरी मृत्यु हो जाएगी।

शिष्य ने सुना तो देखता ही रह गया और आस–पास के भी गांव वाले कहने लगे कि इस तांत्रिक का दिया हुआ श्राप कभी भी व्यर्थ नही जाता।

शिष्य उदास चेहरा लिए वापस आश्रम की ओर चल दिया और सोचते–सोचते जा रहा था कि आज मेरा अंतिम दिन है लगता है मेरा समय खत्म हो गया है।

आश्रम में जैसे ही पहुँचा। गुरु समर्थ रामदास जी हँसते हुए बोले– ''ले आया भिक्षा ?''

बेचारा शिष्य क्या बोले ? वह बोला– ''भिक्षा में अपनी मौत ले आया''! और सारी घटना सुना दी और एक कोने में चुप–चाप बैठ गया।

गुरुदेव बोले ''अच्छा चल भोजन कर ले।''

शिष्य– ''गुरुदेव! आप भोजन करने की बात कर रहे हैं और यहाँ मेरे प्राण सूख रहे हैं। भोजन तो दूर एक दाना भी मुँह में न जा पाएगा।

गुरुदेव बोले– ''अभी तो पूरी रात बाकी है अभी से चिंता क्यों कर रहा है चल ठीक है जैसी तुम्हारी इच्छा।'' और यह कहकर गुरुदेव भोजन करने चले गए।

फिर सोने की बारी आई तब गुरुदेव शिष्य को बुलाकर बोले– ''हमारे चरण दबा दे!''

शिष्य– मायूस होकर बोला– ''जी गुरुदेव जो कुछ क्षण बचा है जीवन के उस क्षण में आपकी सेवा कर ही प्राण त्याग करूँ यही अच्छा होगा।'' और फिर गुरुदेव के चरण दबाने की सेवा शुरू की।

गुरुदेव बोले– ''चाहे जो भी हो चरण छोड़ कर मत जाना कही।''

शिष्य– ''जी गुरुदेव कहीं नहीं जाऊँगा।''

गुरुदेव ने अपने शब्दों को तीन बार दोहराया कि चरण मत छोड़ना, चाहे जो हो जाए।

यह कह कर गुरुदेव सो गए। शिष्य पूरी भावना से चरण दबाने लगा।

रात्रि का पहला पहर बीतने को था अब तांत्रिक ने अपने श्राप को पूरा करने के लिए एक देवी को भेजा जो धन से, सोने–चांदी, हीरे–मोती से भरी थी।

शिष्य चरण दबा रहा था। तभी दरवाजे पर वो देवी प्रकट हुई और कहने लगी ''इधर आओ और यह सब सोना–चांदी ले लो।'' शिष्य ने उत्तर दिया– ''जी मुझे लेने में कोई परेशानी नहीं है लेकिन क्षमा करें, मैं वहाँ पर आकर नहीं ले सकता हूँ। अगर आपको देना ही है तो यहाँ पर आकर दे दीजिए।''

देवी ने यह सुना तो कहने लगी कि– ''नही! नही! तुम्हें यहाँ आना होगा। देखो कितना सारा है। शिष्य बोला– ''नही। अगर देना है तो यहीं आ जाइए।''

तांत्रिक ने अपना पहला पासा असफल देख दूसरा पासा फेंका। तांत्रिक ने इस बार देवी को उस शिष्य की माँ का रूप बनाकर भेजा।

शिष्य गुरु के चरण दबा रहा था तभी दरवाजे पर माँ की आवाज आई– ''बेटा! तुम कैसे हो ?''

शिष्य ने अपनी माँ को देखा तो सोचने लगा अच्छा हुआ जो माँ के दर्शन हो गए मरते वक्त माँ से भी मिल लूँ।

वह औरत जो माँ के रूप में थी बोली– ''आओ बेटा गले से लग जाओ, बहुत दिन हो गए तुमसे मिले।''

शिष्य बोला– ''क्षमा करना माँ! लेकिन मैं वहाँ नही आ सकता क्योंकि अभी गुरुचरण की सेवा कर रहा हूँ। मुझे भी आपसे गले लगना है इसलिए आप यही आ जाओ।''

उस औरत ने देखा कि चाल काम नही आ रही है तो वह वापस चली गई।

रात्रि का तीसरा पहर बिता और इस बार तांत्रिक ने यमदूत रूप वाला राक्षस भेजा।

राक्षस शिष्य से बोला कि ''चल तुझे लेने आया हूँ तेरी मृत्यु आ गई है। उठ और चल।''

शिष्य भी झल्लाकर बोला– ''काल हो या महाकाल मैं नही आने वाला! अगर मेरी मृत्यु आई है तो यही आकर ले जाओ मुझे।'' लेकिन गुरु के चरण नही छोड़ूँगा! आखिरकार राक्षस भी वापस चला गया।

सुबह हुई चिड़ियाँ अपनी घोसले से निकलकर चहचहाने लगीं। सूरज भी उदय हो गया।

गुरुदेव रामदास जी नींद से उठे और बोले– ''सुबह हो गई ?''

शिष्य बोला– ''जी! गुरुदेव सुबह हो गई।''

''अरे! तुम्हारी तो मृत्यु होने वाली थी न तुमने ही तो कहा था कि तांत्रिक का श्राप कभी व्यर्थ नहीं जाता। लेकिन तुम तो जीवित हो...।'' गुरुदेव हँसते हुए बोले।

शिष्य भी सोचते हुए बोला– ''जी गुरुदेव लग तो रहा है कि जीवित ही हूँ।'' फिर जब रात की सारी घटना याद की तो समझ में आया कि गुरुदेव ने क्यों कहा था कि चाहे जो भी हो जाए चरण मत छोड़ना। शिष्य गुरुदेव के चरण पकड़कर खूब रोने लगा बार बार यही कह रहा था– ''जिसके सर पर आप जैसे गुरु का हाथ हो उसे काल भी कुछ नहीं कर सकता है।''

गुरु की आज्ञा पर जो शिष्य चलता है उसे तो स्वयं मौत भी आने से पहले एक बार नहीं अनेक बार सोचती है।

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण गुरु की आज्ञा सिर पर लेकर चले, प्रभु राम भी गुरु की आज्ञा पर चले।

पूर्ण सद्गुरु में ही सामर्थ्य है कि वो प्रकृति के नियम को बदल सकते हैं, जो ईश्वर भी नहीं बदल सकते। क्योंकि ईश्वर भी प्रकृति के नियम से बंधे होते है, लेकिन पूर्ण सद्गुरु नहीं।

आज जीवन भार क्यों है ?

आज जीवन भार इसलिए है कि हम कलों को ढो रहे हैं। जो बीत गये कल, उनका पहाड़ हमारी छाती पर सवार है। और जो आए नहीं कल, उनका पहाड़ भी हमारी छाती पर सवार है। इन दो पाटों के बीच आदमी पिसता है, मर जाता है; घसिटता है, रोता है, टूटता है, खंडित होता है। इन दो पाटों के बीच कोई भी साबुत नहीं बच पाता। लेकिन इन दो पाटों के बीच भी एक स्थान है, मुक्ति का एक द्वार है। वह है वर्तमान का छोटा सा क्षण।

तेरी याद में मेरा झूमना
मेरी हज है, मेरी नमाज़ है
ये अगर गुनाह है, तो हुआ करे
मुझे इस गुनाह पर नाज़ है

जब ज़िंदगी रुलाये तो समझना
गुनाह माफ़ हो गये,
ओर जब ज़िंदगी हँसाये तो समझना
दुआ कबूल हो गयी

भगवान को भेंट

पुरानी बात है एक सेठ के पास एक व्यक्ति काम करता था। सेठ उस व्यक्ति पर बहुत विश्वास करता था। जो भी जरुरी काम हो सेठ हमेशा उसी व्यक्ति से कहता था। वो व्यक्ति भगवान का बहुत बड़ा भक्त था वह सदा भगवान के चिंतन, भजन–कीर्तन, स्मरण, सत्संग आदि का लाभ लेता रहता था।

एक दिन उसने सेठ से श्री जगन्नाथ धाम यात्रा करने के लिए कुछ दिन की छुट्टी मांगी सेठ ने उसे छुट्टी देते हुए कहा– ''भाई! मैं तो हूँ संसारी आदमी हमेशा व्यापार के काम में व्यस्त रहता हूँ जिसके कारण कभी तीर्थ गमन का लाभ नहीं ले पाता। तुम जा ही रहे हो तो यह लो 100 रुपए मेरी ओर से श्री जगन्नाथ प्रभु के चरणों में समर्पित कर देना।" भक्त सेठ से सौ रुपए लेकर श्री जगन्नाथ धाम यात्रा पर निकल गया।

कई दिन की पैदल यात्रा करने के बाद वह श्री जगन्नाथ पुरी पहुँचा। मंदिर की ओर प्रस्थान करते समय उसने रास्ते में देखा कि बहुत सारे संत, भक्त जन, वैष्णव जन, हरि नाम संकीर्तन बड़ी मस्ती में कर रहे हैं। सभी की आंखों से अश्रु धारा बह रही है। जोर–जोर से हरि बोल, हरि बोल गूंज रहा है। संकीर्तन में बहुत आनंद आ रहा था। भक्त भी वहीं रुक कर हरिनाम संकीर्तन का आनंद लेने लगा।

फिर उसने देखा कि इतनी देर से संकीर्तन करने के कारण संकीर्तन करने वाले भक्तजनों के होंठ सूखे हुए हैं, वह दिखने में कुछ भूखे भी प्रतीत हो रहे हैं। उसने सोचा क्यों ना सेठ के सौ रुपए से इन भक्तों को भोजन करा दूँ।

उसने उन सभी को उन सौ रुपए में से भोजन की व्यवस्था कर दी। सबको भोजन कराने में उसे कुल 98 रुपए खर्च करने पड़े। उसके पास दो रुपए बच गए उसने सोचा चलो अच्छा हुआ दो रुपए जगन्नाथ जी के चरणों में सेठ के नाम से चढ़ा दूँगा।

जब सेठ पूछेगा तो मैं कहूंगा पैसे चढ़ा दिए। सेठ यह तो नहीं पूछेगा कि 100 रुपए चढ़ाए। सेठ पूछेगा पैसे चढ़ा दिए, मैं बोल दूंगा कि, पैसे चढ़ा दिए। झूठ भी नहीं होगा और काम भी हो जाएगा।

भक्त ने श्री जगन्नाथ जी के दर्शनों के लिए मंदिर में प्रवेश किया श्री जगन्नाथ जी की छवि को निहारते हुए अपने हृदय में उनको विराजमान कराया। अंत में उसने सेठ के दो रुपए श्री जगन्नाथ जी के चरणो में चढ़ा दिए। और बोला यह दो रुपए सेठ ने भेजे हैं।

उसी रात सेठ के पास स्वप्न में श्री जगन्नाथ जी आए आशीर्वाद दिया और बोले सेठ तुम्हारे 98 रुपए मुझे मिल गए हैं यह कहकर श्री जगन्नाथ जी अंतर्ध्यान हो गए। सेठ जाग गया सोचने लगा मेरा नौकर तो बड़ा ईमानदार है पर अचानक उसे क्या जरुरत पड़ गई थी उसने दो रुपए भगवान को कम चढ़ाए ? उसने दो रुपए का क्या खा लिया ? उसे ऐसी क्या जरूरत पड़ी ? ऐसा विचार सेठ करता रहा।

काफी दिन बीतने के बाद भक्त वापस आया और सेठ के पास पहुँचा। सेठ ने कहा कि मेरे पैसे जगन्नाथ जी को चढ़ा दिए थे ? भक्त बोला हाँ मैंने पैसे चढ़ा दिए। सेठ ने कहा पर तुमने 98 रुपए क्यों चढ़ाए दो रुपए किस काम में प्रयोग किए।

तब भक्त ने सारी बात बताई की उसने 98 रुपए से संतो को भोजन करा दिया था। और ठाकुरजी को सिर्फ दो रुपए चढ़ाये थे। सेठ सारी बात समझ गया वह बड़ा खुश हुआ तथा भक्त के चरणों में गिर पड़ा और बोला– ''आप धन्य हो आपकी वजह से मुझे श्री जगन्नाथ जी के दर्शन यहीं बैठे–बैठे हो गए।''

सन्तमत विचार– भगवान को आपके धन की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान को वह 98 रुपए स्वीकार है जो जीव मात्र की सेवा में खर्च किए गए और उस दो रुपए का कोई महत्व नहीं जो उनके चरणों में नगद चढ़ाए गए। सच्चे मन से किसी जरूरतमंद की जरूरत को पूरा कर देना भगवान को भेंट चढ़ाने से भी कहीं ज्यादा अच्छा होता है।

हम उस परमात्मा को क्या दे सकते हैं.....जिसके दर पर हम ही भिखारी हैं।

अकेलापन v/s एकांत

'अकेलापन' इस संसार में सबसे बड़ी सज़ा है!
और 'एकांत' सबसे बड़ा वरदान!

ये दो समानार्थी दिखने वाले शब्दों के अर्थ में
आकाश पाताल का अन्तर है।

अकेलेपन में छटपटाहट है,
एकांत में आराम।

जब तक हमारी नज़र बाहर की ओर है
तब तक हम अकेलापन महसूस करते हैं!

जैसे ही नज़र भीतर की तरफ मुड़ी,
तो एकांत अनुभव होने लगता है।

ये जीवन और कुछ नहीं, वस्तुतः
अकेलेपन से एकांत की ओर
एक यात्रा ही है!

ऐसी यात्रा जिसमें, रास्ता भी हम हैं,
राही भी हम हैं, और मंज़िल भी हम ही हैं।

सन्यास का अर्थ क्या है

खुली हुई मुट्ठीवाला जीवन, जहाँ हम कुछ भी बांधना नहीं चाहते। जहाँ जीवन एक प्रवाह है और सतत नये की स्वीकृति और कल जो दिखएगा उसके लिए भी परमात्मा को धन्यवाद का भाव।

बीते हुए कल को भूल जाना है, और जिसने जीवन के प्रवाह में बहने की सामर्थ्य साध ली, जो प्रवाह के साथ बहने लगा– सरलता से, सहजता से, असुरक्षा में, अनजान में, अज्ञान में – वही सन्यासी है।

इनायत शाह जी और बुल्ले शाह जी का ''गुरु-शिष्य प्रेम''

एक दिन इनायत शाह जी के पास बगीचे, में बुल्ले शाह जी पहुँचे। उस वक्त शाह इनायत जी बगीचे में से बूटी निकाल रहे थे। वे अपने कार्य में इतने व्यस्त थे जिसके कारण उन्हें बुल्ले शाह जी के आने का पता न लगा। बुल्ले शाह ने उनका ध्यान अपनी तरफ करने हेतु अपने आध्यात्मिक अभ्यास की शक्ति से परमात्मा का नाम लेकर ''आमों'' की ओर देखा, तो पेड़ों से सारे आम गिरने लगे।

इनायत शाह जी ने जब देखा कि सारे आम गिर रहे है, तो उन्होंने अपना ध्यान बुल्ले शाह जी की तरफ किया और पूछा, "क्या यह आम आपने तोड़े हैं?" बुल्ले शाह ने कहा, ''हजूर, ना तो मैं पेड़ पर चढ़ा, और ना ही मैंने पत्थर फैंके, फिर भला मैं कैसे आम तोड़ सकता हूँ''।

इनायत शाह जी ने बुल्ले शाह को ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह से देखा और मुस्करा कर कहा, "अरे तू चोर भी है और चतुर भी"।

बुल्ले शाह जी फौरन इनायत शाह जी के चरणों में गिर पड़े मानों चोरी पकड़ी गयी हो। बुल्ले शाह जी ने अपना नाम बताया और कहा, ''मैं रब को पाना चाहता हूँ, क्या आप मेरी मदद कर सकेंगे''।

इनायत शाह जी ने कहा,

"बुल्लिआ रब दा की पौणा,
एधरों पुटणा ते ओधर लाउणा"

इन सीधे-सादे और सरल शब्दों में इनायत शाह जी ने रूहानियत का तमाम सार समझा दिया कि मन को संसार की तरफ से हटाकर परमात्मा की ओर मोड़ देने से रब मिल जाता है। बुल्ले शाह ने भी ये प्रथम दीक्षा गांठ बांध ली और सदा के लिए अपने गुरु के मुरीद बन गए।

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार–शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम–सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट–छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद–201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी–66, सैक्टर–6, नोएडा–201301